मूल्य ५०.०० रुपये

वर्ष ३६

अंक ०२

तित्थयर

मई २०१२

॥ जैन भवन ॥

शुभ कामनाओं सहित —

मनुष्य कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय,
कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।

Suvigya & Saurabh Boyed

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३६ अंक - ०२ मई २०१२

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय
पत्ना - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Phone : (033) 2268-2655, 2272-9028,
Email : jainbhawan@bsnl.in

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00
Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655 and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street Kolkata - 700 007
Phone : 2241-1006

संपादन
डॉ. लता बोथरा

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं.
१.	हिन्दी की विकास प्रक्रिया में अपभ्रंश की केन्द्रोयता	डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य	४१
२.	कुवलय माला		५४

ISSN 2277 - 7865

कवरपृष्ठ : एलोरा की गुफा में उत्कीर्ण देवी अम्बिका की मूर्ति।

Composed by:

Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

हिन्दी की विकास प्रक्रिया में अपभ्रंश की केन्द्रीयता

प्रासंगिक जैन संदर्भ

डॉ. अभिजीत भट्टाचार्य

अपभ्रंश भाषा की संरचना तथा केन्द्रीयता : भाषिकी सन्दर्भ

हिन्दी साहित्य के प्राचीन सूत्र तथा भाषा व संरचनात्मक परम्परा में अपभ्रंश का एक विशेष स्थान रहा है। भाषा तथा साहित्य की विकास-दृष्टि से अपभ्रंश मध्यकालीन तथा आधुनिक आर्यभाषाओं के मध्य में अवस्थित है। संस्कृत, प्रालि, प्राकृत आदि पूर्ववर्ती भाषाओं में जितने प्रकार के भाषावैज्ञानिक तथा साहित्यिक तत्त्व परिलक्षित होते हैं, अपभ्रंश में उन सभी तत्त्वों का समाहार है।

बहरहाल, ऐतिहासिक भाषिकी विकास परम्परा के अन्तर्गत सभी विद्वान अपभ्रंश को हिन्दी और प्राकृत की मध्यवर्ती स्थिति के रूप में नहीं मानते। डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने यह मत प्रदान किया है कि छठी शताब्दी से प्रत्येक प्राकृत के साथ उसके अपने अपभ्रंश रूप का प्रचलन शुरू हो गया था। उनके अनुसार—

"One can very well understand that after the M.I.A. (Middle Indo Aryan) forms (Pāli and Śaurasēnī and other Prākrits) were established, deviations in the vulgar speech, especially of some of the less cultured peoples of North Western and Western India, would be described as 'Apabhrāṅśa' forms; and when these new traits became established in the speech of all classes in Western and Northern India, and certain

other new characteristics, not noticed before in the 5th or 6th century, were developed and established, the term 'Apabhraṅśa would come to be restricted for this new phase of the speech to distinguish it from the well attested 'Prākrit'"[1]

एक दूसरी जगह वे अपभ्रंश के सम्बन्ध में कहते हैं–

"It would seem that the germs of the Apabhraṅśa stage were present as early as the 5th century.....

The Apabhraṅśas as popular dialects, came to be employed by the masses for their songs and couplets; and with a popular literature, they came later to obtain recognition from scholars as well. Hēma-candra, evidently following earlier and generally accepted nomenclature, called this late form of Middle-Indo-Aryan, as used in literature an 'Apabhraṅśa'. The necessity for exact definitions in modern scholarship has gradually established, in Indo Aryan Linguistics, the use of the term Apabhraṅśa, to indicate the stage between the Prakrits of the dramas (second M.I.A.) and the modern vernaculars".[2]

जहाँ तक अपभ्रंश का सवाल है, सुनीतिबाबू के इस मत को डॉ. हरदेव बाहरी ने खण्डित किया है। अर्थात् मागधी प्राकृत के बाद मागधी

1. Chatterjee, Dr. Suniti Kumar, 'Origin and Development of the Bengali Language', Rupa and Co., 1993, p. 89-90.
2. Ibid, p. 90. अधिक जानकारी के लिए देखें, Pischel, Richard, 'Materialenzur Kenntnis es Apabhraṅśa', Göttingen, 1902, Jacobi, Hermann 'Bhavisatta Kaha,' Ueber den Apabhraṅśa, pp. 53 आदि।

अपभ्रंश नहीं पनपा होगा।[3] पर सामान्यतः यही मत स्वीकार्य रहा कि प्राकृत के हर भाषिकी स्वरूप के साथ, उसका अपभ्रंश रूप भी विकसित हुआ और पैशाची प्राकृत से पैशाची अपभ्रंश, सिंध का ब्राचड़ अपभ्रंश, सिंहली का एलू अपभ्रंश, सौराष्ट्री से विकसित सौराष्ट्री या नागर अपभ्रंश, शौरसेनी प्राकृत से शौरसेनी अपभ्रंश, अर्धमागधी प्राकृत से अर्धमागधी अपभ्रंश जैसे विभिन्न समगोत्रीय भाषिकी स्वरूप उठ खड़े हुए तथा सामाजिक स्तर पर प्रस्फुटित हुए।

यहाँ एक और सूत्रशब्द की व्याख्या जरूरी है। नमिसाधु के कथन में जिस **प्राकृतेवापभ्रंशः** की अवधारणा पाई जाती है–उससे एक हद तक यहीं व्याख्या निकलती है कि नमिसाधु ने प्राकृत से **महाराष्ट्री प्राकृत** की ओर इंगित किया था। अन्य प्राकृतों की भाँति अपभ्रंश की **प्रकृतिगत सम्पृक्ति** (Essential Formative Cognition) महाराष्ट्री प्राकृत से जुड़ी हुई है। पर अपने निजी भाषा-विन्यास व शब्द-स्फोटन वैशिष्ट्य के चलते अपभ्रंश महाराष्ट्री प्राकृत पर आधारित होते हुए भी मागधी आदि अन्य प्राकृतों से सर्वथा विशिष्ट है।[4]

अपभ्रंश के आदिरूप की चर्चा करते समय, वैयाकरणों ने अपभ्रंश के भेदों की अलग से चर्चा की है। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीन प्रधान भाषिकी बिंदुएँ हैं। अपभ्रंश का मूल प्राकृत ही है। जब प्राकृत की बात चली तो अपभ्रंश तथा आभीर जाति के पारस्परिक सम्बन्ध की चर्चा यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगी।

आचार्य दण्डी ने अपने '**काव्यादर्श**' ग्रन्थ में '**आभीरादि गिरयः**' कहकर इस बात का संकेत दिया है कि अपभ्रंश आभीरों की भाषा थी।[5] इसका मूल आशय विद्वान यही निकालते हैं कि आभीर दलसहित जहाँ

---

3. डॉ. हरदेव बाहरी, हिन्दीः उद्भव-विकास और रूप, पृष्ठ 36-37
4. डॉ. रामकिशोर, अपभ्रंश मुक्तक काव्य और उसका हिन्दी पर प्रभाव, हिन्दी परिषद् प्रकाशन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, पृष्ठ 1
5. दण्डी, काव्यादर्श, पृष्ठ।

जहाँ भी जाते थे, उन्हीं स्थानों में प्रचलित प्राकृत को अपनाने का प्रयास करते थें। कथ्य प्राकृत में परिवर्तनशीलता के विद्वान दो प्रमुख कारण बतलाते हैं। एक तो स्वाभाविक विकास के चलते प्राकृत में बदलाव आया दूसरे आभीरों के औच्चारणिक वैशिष्ट्य के कारण इस बदलाव में तेज़ी आई। यही परिवर्तित प्राकृत, अपभ्रंश के नाम से मान्य हुआ।

आभीरों के द्वारा राज्य प्रतिष्ठा के साथ-साथ अपभ्रंश का आंचलिक विस्तार होता रहा। पश्चिम भारत में आभीरों की राज्य स्थापना से अपभ्रंश भाषा को राजभाषा बनाया गया। **बंगाल** के **पाल राजवंश** तथा राष्ट्रकूट नरेशों ने बड़े पैमाने पर अपभ्रंश को संरक्षण प्रदान किया। **पाल शासनकाल**[6] के दौरान अपभ्रंश में रचना करनेवाले **सरहपाद** तथा **कान्हपाद** (सरोजवज्रपाद और कृष्णवज्रपाद) जैसे बौद्ध सिद्ध रचनाकार हुए। दूसरी तरफ **पुष्पदन्त** और **स्वयम्भू** जैसे महान जैन कवि **राष्ट्रकूट राजवंश** की छत्रछाया में फलते-फूलते रहे। अपभ्रंश के भाषिकी स्वरूप ने जब साहित्यिक उत्कर्ष को स्पर्श किया, रचनात्मक-सर्जनात्मक अपभ्रंश जब ज्ञान तथा संवेदना के द्विविध पर्यायों में स्तरीय कलात्मक सम्प्रेषण करने लगा, तब उससे प्राकृत के अन्य भाषिकी स्वरूप भी प्रभावित होने लगे। अपभ्रंश का यह स्वरूप अपनी क्षेत्रीयता के कारण कुछ अलग दिखाई पड़ता है। उत्तरकालीन प्राकृत का यह जो रूप अपभ्रंशों के आंचलिक तथा क्षेत्रीय विशेषताओं के साथ उभरकर आया है, उसे विशेषज्ञों ने क्षेत्रीयता के आधार पर निर्धारित किया है।[7]

अपभ्रंश व्याकरण के रचयिता **डॉ. गोविन्द वासुदेव तगारे** ने अपने ग्रन्थ में अपभ्रंश के तीन प्रधान विभाजन किए हैं। इन भेदों का प्रधान आधार व्याकरण तथा उच्चारण सम्बन्धी प्रभेद हैं।

---

6. पाल शासनकालीन जिन राजाओं ने शासन किया, वे हैं– गोपाल, धर्मपाल, देवपाल, प्रथम विग्रहपाल, नारायणपाल, प्रथम महीपाल, नयपाल, द्वितीय विग्रहपाल, द्वितीय महीपाल, रामपाल।
7. डॉ. नामवर सिंह, हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान, पृष्ठ 29

1) पश्चिमी अपभ्रंश :-

पश्चिमी अपभ्रंश को ही परिनिष्ठित अपभ्रंश (Standard) माना जाता रहा है। अपभ्रंश की सभी सामान्य विशेषताएँ इसी के आधार पर मानी जाती रही है।

2) पूर्वी अपभ्रंश :-

(क) पूर्वी अपभ्रंश के भाषिकी भेदों के आधार पर संस्कृत की ध्वनि क्ष, ख, क्ख में परिवर्तित हुई। क्षण बना खण, अक्षर–अक्खर। त्व का परिवर्तन तु–त्त, द्व बना दु, व परिवर्तित होकर बना ब। अविकारी सामान्य कारक निर्माण अधिक देखा गया।

(ख) संस्कृत का **तालव्य श** इस परिवर्तन से अपरिवर्तित रहा। साथ ही इसमें आदि महाप्राणत्व नहीं देखा गया।

(ग) एक और विशेष लक्षण यह है कि यहाँ पूर्वकालिक तथा क्रियार्थक संज्ञा के प्रत्ययों में मिश्रण नहीं हो पाया है। जहाँ क्रियार्थक संज्ञा होती है, वहाँ अपभ्रंश तथा उसके अंगीभूत शब्दों में **अण** प्रत्यय का प्रयोग नहीं मिलता।

3) दक्षिणी अपभ्रंश :-

(क) अन्य अपभ्रंशों में जहाँ मिश्र शब्दखंड बैठते हैं, वहाँ **क्ख** या **ख** देखने को मिलता है। पर यहाँ संस्कृत **ष** का **छ** होता है।

(ख) यहाँ अकारान्त पुंल्लिंग शब्द, तृतीया विभक्ति एक वचन में अधिकांशतः **एण** रूप मिलता है। व्याकरणिक नियम के आधार पर परिनिष्ठित रूप **ए** माना गया।

(ग) इसमें उत्तम पुरुष एक वचन में सामान्य वर्तमान की क्रिया **मि**-परक है, जबकि परिनिष्ठित रूप **हिं** होता है, जैसे **करहिं**।

(घ) बहुवचन के मामले में, अन्य पुरुष में सामान्य वर्तमान की क्रिया **न्ति** रूप में होती है। जैसे, **करन्ति,** जबकि परिनिष्ठित रूप हिं होता है– जैसे, करहिं।

(ङ) पूर्वकालिक क्रिया के अन्तर्गत **इ** का प्रयोग बहुत कम है।[8]

उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि एक शैलीगत अन्तर यहाँ मौजूद है। हाँलाकि डॉ. नामवर सिंह यहाँ विभेद का कारण प्राकृत का प्रभाव मानते हैं। नामवरजी के अनुसार **पश्चिमी अपभ्रंश** नाम से अभिहित **भविसयत्त कहा** तथा **दक्षिणी अपभ्रंश** नाम से अभिहित **महापुराण** की भाषा में कोई मौलिक अन्तर नहीं है।[9] एक दूसरा आधार भी हमारे समक्ष उजागर होता है, जिसके प्रवक्ता थे प्रख्यात बौद्ध चर्यागीत विशेषज्ञ, डॉ. प्रबोधचन्द्र बागची। डॉ. बागची ने स्पष्ट रूप से पूर्वी और पश्चिमी अपभ्रंश के आधार को खण्डित किया और कहा कि वस्तुतः दोहा कोषों की रचना बहुत कुछ परिनिष्ठित अपभ्रंश में ही हुई। यही पछाहीं भाषा भी कहलाती है। कहीं-कहीं कुछ स्थानीय प्रभाव तथा लिपिगत शैली-वैशिष्ट्य के चलते पूर्वी प्रदेश की बोली के लक्षण यहाँ दिखाई पड़ते हैं।[10] चर्यागीतिका के भाषिकी स्वरूप में पूर्वीपन स्पष्टतः दिखाई देता है। इसी कारण विद्वान पूर्वी अपभ्रंश को परिनिष्ठित अपभ्रंश की विभाषा का दर्जा देते हैं।

अपभ्रंश के भाषिकी विवेचन की संक्षिप्त आलोचना करते हुए हम पाते हैं कि इसका विस्तार पूर्व एवं दक्षिण के अलावा उत्तर में भी था। उत्तरी अपभ्रंश का प्रयोग **लल्लेश्वरी वाक्यानि, महानयप्रकाश, परात्रिंशिका** आदि रचनाओं में किया गया है।

अपभ्रंश का साहित्यिक संदर्भ

संस्कृत-प्राकृत की परम्पराओं के आधार पर अपभ्रंश ने द्वैतपरक (dichotomic) भूमिका अपनाते हुए प्राचीन भाषिकी परम्पराओं के

---

8. Dr. G.B. Tagare, Historical Grammar of Apabhramśā, Introduction, p. 15-38
9. डॉ. नामवर सिंह, हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान, पृष्ठ 53
10. Dr. Prabodh Chandra Bagchi, 'A Note On The Language of The Buddhist Dohas, Oriental Journal, Calcutta.

साथ कुछ नवीन साहित्यिक प्रवृत्तियों को भी जन्म दिया। इन प्रवृत्तियों को आधुनिक आर्य भाषा हिन्दी में भी देखा गया।

अपभ्रंश में प्रबन्धात्मक चरित काव्य की बड़ी बलिष्ठ परम्परा रही है। इनमें रामकथा को लेकर **स्वयंभू** रचित **पउमचरिउ** का नाम उल्लेखनीय है, जो वस्तुतः जैन चिन्तन तथा आदर्शों पर आधारित है। ध्यान देने की बात यह है कि **स्वयंभू** कृत **पउमचरिउ** विशेष तौर पर प्रख्यात प्राकृत जैन कवि **विमलसूरि** के **पउमचरिउ** से प्रभावित है। इसकी मूल कथा का निर्माण, लोक में प्रचलित कुछ शंकाओं के निवारणार्थ गौतम गणधर द्वारा कथा का आरम्भ, जैन-रामकथानुसार प्रचलित रामकथा में अनुकूल परिवर्तन, प्रधान पात्रों का जैन धर्म स्वीकारना[11] आदि कई बातों में स्वयंभू का पउमचरिउ, विमलसूरि के पउमचरिउ से मिलता जुलता है।

ऐसे अनेक अपभ्रंश में रचित धार्मिक चरित काव्य-परम्परा हैं, जो लगभग समानुपातिक तौर पर पूर्वतन प्राकृत परम्परा में भी पाए जाते रहे हैं। चरित काव्य संस्कृत में भी पाए जाते हैं परन्तु उनमें धार्मिकता का आग्रह उतना नहीं है। जैन धर्म को आधार बनाकर धार्मिक उद्देश्यों से चरित निर्माण की प्रवृत्ति प्राकृत से शुरू हुई। प्राकृत की पूर्वतन रचनात्मक परम्परा में चरित काव्य देखे जा सकते हैं। इनमें **सुपासनाह चरिउ, महावीर-चरिउ (गद्य-पद्यबद्ध), कुमारपाल चरिउ, विजयचन्द-चरिउ** आदि उल्लेखनीय हैं। जैन धर्मानुकूल आधार लिए इसी धारा के अन्तर्गत परवर्तीकालीन अपभ्रंश चरित काव्यों की रचना हुई। इनमें **महापुराण, णयकुमार चरिउ, जसहर चरिउ, पासनाह चरिउ, रिट्ठणेमि चरिउ, जंबूसामि चरिउ, करकंडु चरिउ, पउमसिरी चरिउ** आदि प्रमुख माने जाते हैं। चरित काव्यों का वर्ण्य विषय लगभग समान ही रहा है, जैसे, किसी महापुरुष के पूर्व जीवन का चित्रण, अनेक व्रतों के सम्यक पालन के उपरांत मिलने वाली आध्यात्मिक उत्कर्षता की स्थितिं, नश्वरता

---

11. डॉ. रामकिशोर, अपभ्रंश मुक्तक काव्य और उसका हिन्दी पर प्रभाव, पृष्ठ 10.

का बोध तथा क्षणभंगुर संसार से वैराग्य, दैवी घटनाएँ, शुभ-अशुभ कर्मों के प्रभाव आदि का वर्णन। अपभ्रंश में ऐसे चरित काव्य रचे गए जिनका लेखन रामायण महाभारत की कथाओं के आधार पर निर्मित हुआ। प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य में यह प्रवृत्ति विशेष प्रचलित थी। प्रवरसेन रचित महाकाव्य **सेतुबन्ध या रावण वध** रामकथा पर आधारित है। **सिरि चिंध कव्वं** या **श्रीचिह्नकाव्यं** श्रीकृष्ण की लीला पर आधारित है। इन काव्यों में शुद्ध साहित्यिक रचनात्मकता के स्वरूप देखे जा सकते हैं।[12] इन साहित्यिक कृतियों की सबसे बड़ी विशेषता है कि इन कृतियों में धार्मिक घटाटोप न के बराबर है। अपभ्रंश में **पउमचरिउ** के अलावे **बलभद्द चरिउ** के अन्तर्गत रामकथा का ही आधार लिया गया है। कहीं कुछ कृतियों में भी **हरिवंश पुराण** से कथाएँ चुन ली गई हैं। **पुष्पदंत** रचित **महापुराण** तथा **धवल** कृत **रिट्ठणेमि चरिउ** इसी प्रकार की रचनाएँ है। विषय के तौर पर तीर्थंकरों की जीवन गाथा ही अधिकांशतः सामने आती रही है। इस धारा के अपवादस्वरूप प्राकृत अपभ्रंश में **गौडवहो** तथा **भविष्यदत्त-कहा** का नाम लिया जा सकता है। रासो काव्य भी अपने उद्‌भव के लिए अपभ्रंश का आभारी है। साथ ही जैन रास काव्य की परम्परा शुरू हुई। किसी धार्मिक व्यक्ति या व्रत आदि कथाओं के आधार पर **जंबू-स्वामी रास, गौतमरास, समरसाह रास, यशोधर रास, भरतेश्वर बाहुबली रास** जैसे ग्रन्थों की रचना की गई। इधर आदिकालीन हिन्दी साहित्य में वीररसात्मक भाव-सम्प्रेषण के लिए **पृथ्वीराज रासो, खुमाण रासो, हम्मीर रासो,** तथा **बीसलदेव रासो** आदि काव्यात्मक रचनाएँ की गई। ध्यान देने की बात यह है कि अपभ्रंश के चरित काव्यों का विशेष प्रभाव इन रासो काव्यग्रन्थों पर पड़ा। हालांकि दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाए तो, अपभ्रंश के रास काव्यों में वीररस या वीर-भाव नहीं देखे गए। **उपदेश-रसायन रास,** तथा **भरतेश्वर बाहुबलि रास** इसके प्रकृष्ट उदाहरण हैं। अपभ्रंश में संदेशरासक की रचना हुई

12. Dr. P.N. Agarwal, Apabhraṁśa and its Age p. 48.

जो विरह तथा प्रेम के भावों को विविध आयामों में सम्प्रेषित करने में समर्थ हुआ। दूसरी तरफ क्षीण प्रबन्ध- धर्मा मुक्तक के रूप में **बीसलदेव रासो** की रचना हुई।[13]

अपभ्रंश भाषा में प्रेमाख्यानक काव्य का आदि रूप देखने को मिलता है। एक तरह से यह भी कहा जा सकता है कि **सूफी काव्य के अन्तर्गत प्रेमाख्यानों का जो रूप उपलब्ध होता है उसे अपभ्रंश ने पहले से सुरक्षित कर रखा था।** कुतुबन कृत **मृगावती,** मंझन कृत **मधुमालती,** उसमान कृत **चित्रावली,** नूर मुहम्मद कृत **इन्द्रावती** आदि प्रेम कथाएँ बहुत कुछ कल्पना-प्रसूत ही हैं। इनमें अपवादस्वरूप जायसी आते हैं, जिन्होंने **पद्मावत** के कथानक को ऐतिहासिकता से सम्पृक्त रखा। जब हम सूफी प्रेमाख्यानक तथा अपभ्रंश काव्यों की कथानक-शैली को देखते हैं, तो एक अन्तर्निहित समानता देखने को मिलती है। दोनों आयामों के अन्तर्गत धार्मिक तथा पारलौकिक प्रसंगों के द्वारा काव्यिक विषय-विन्यास को व्याप्त किया गया है। चरित्र-चित्रण में सौन्दर्य एवं पुरुषार्थ के साथ-साथ नायक-नायिका की पारस्परिक प्रगाढ़ अनुरक्ति का चित्रण दोनों में समान रूप से देखने को मिलता है। इस प्रेम की दैवी परीक्षा भी होती है।

अपभ्रंश में रचित **भविष्यदत्त कथा, सुदर्शन चरित, उपमश्री चरित, जिनदत्त चरित** आदि कृतियों की निर्माणशैली इसी परिपाटी में रची-बसी है। बाद के कवियों ने इनकी शैली को अपनाने में कोई संकोच नहीं किया। इस तरह अपभ्रंश के लगभग सभी काव्य रूपों को हिन्दी ने अपना लिया। इस बात को कहने में कोई अन्यथा नहीं होनी चाहिए कि साहित्य परम्परा के दृष्टिकोण से भक्तिकालीन कृतियों में सर्वोत्कृष्ट- तुलसी का **रामचरितमानस** अपभ्रंश के चरित काव्यों की सर्वथा सुविकसित, मौलिक तथा उत्कृष्ट परिणति है। जैन हो या वैष्णव, धार्मिकता की तात्त्विक वृत्ति यहाँ आधारभूत प्राणतत्त्व है।

---

13. रघुवंश राजवीर, अपभ्रंश साहित्य, पृष्ठ 140

अपने **पउमचरिउ** के आरम्भिक पदों में महाकवि स्वयंभू ने स्पष्ट रूप से अपनी दीनता को प्रकट करते हुए काव्य लेखन से पहले दैन्यज्ञापन किया है—

वुहयण सयंभु पइ विलवइ मइं सरिसत अण्णु णत्थि कुकइ।
वायरणु कयावि न जाणियउं न वि वित्ति सुत्तु वक्खाणियउं।
ण उ पच्चाहारहो तत्तिकिय ण उ संधि हे उप्परि बुद्धिथिय।[14]

स्वयंभू कहते हैं—**मेरे समान कुकवि दूसरा कोई नहीं होगा। न तो मैं व्याकरण जानता हूँ और न मैंने वृत्ति सूक्तिका व्याख्यान किया है। मैंने न तो पाँचों महाकाव्यों को सुना है और न पिंगल प्रस्तार आदि छंदों के लक्षण ही जानता हूँ। भामह या दण्डी के अलंकार शास्त्रों से भी मेरा कोई परिचय नहीं है।**

परम्परा न सिर्फ प्रभावित करती है—साथ ही दो महान व्यक्ति, जो अलग-अलग समयकाल में पैदा हुए हो, उनके भावों को पीढ़ियों और युगों के इस पार, उस पार एकसूत्रता में बाँधती भी है। यहीं जो आदिकालीन जैन काव्य की **पद्धड़िया-घत्ता** शैली थी, वही आगे भक्तिकाल तक जाते-जाते चौपाई-दोहा शैली में बदल गई। तुलसीदास ने **मानस** के प्रारम्भ में **कवि न होहुं नहिं चतुर कहाउं** आदि शब्दों में अपने पूर्ववर्ती स्वयंभू की ही दैन्योक्ति को दोहराते हैं।[15] यही भावसाम्य हमें तुलसी द्वारा रामचरितमानस में **दुर्जन-सज्जन स्मरण** के अन्तर्गत देखने को मिलता है, जो स्वयंभू अपने **पउमचरिउ** में सम्प्रेषित करते हैं।[16]

---

14. स्वयंभू, पउमचरिउ, 1.3
15. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस, 1.46
16. यहाँ स्वयंभू की पक्तियाँ तुलनीय हैं—

रामकहाणइ एह कमागय।
अक्खरपास जलोह मणोहर सुअलंकार सद्दमच्छोहर।
पीह समान पवाहवंकिय स वकयपायय पुलिणालंकिय।
देसी भासउभयतुडुज्जल कवि दुक्कर थणसद्दसिलायल।
—पउमचरिउ, 1.37

अपभ्रंश के साथ इस तरह जैन दर्शन तथा जैन साहित्यकार परवर्ती हिन्दी भाषा के साहित्यिक विकास में भावात्मक तथा संरचनात्मक सूत्रायण का कार्य करते रहे। यह न केवल पारम्परिक सर्जनात्मकता के आयामों का विकास था, बल्कि साथ ही साथ निर्माणपरक तन्तुओं में भी एक अन्तर्निहित समानता का बोध प्रसारित कर रहा था।

अपभ्रंश में प्राप्त कई प्रेमकथाएँ हैं, जो प्राकृत में ही विकसित हो चली थी। प्रख्यात जैन साहित्यकार **संघदास गणि** ने **'वसुदेव हिंडी'** कथा की रचना की, जिसका मूल आधार महाभारत तथा हरिवंश को माना जाता है। **समराइच्च कहा** दिव्यमानव से सम्पृक्त धार्मिक कथा है, जिसमें भारतीय जीवन के अनेक पहलू परिलक्षित होते हैं। महेश्वर सूरि की **पंचमी कथा** एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। जिनहर्ष गणि रचित **रणसेहरी कहा** एक प्रसिद्ध प्रेमाख्यान है, जिसमें रत्नपुर के राजा रत्नशेखर तथा सिंहलद्वीप की राजकुमारी रत्नावली के जन्मान्तरीण प्रेम का चित्रण किया गया है। इनमें प्राकृत में रचित **लीलावती कथा** को एक विशुद्ध प्रेमाख्यान के रूप में विद्वान मानते रहे हैं। प्राकृत कथाओं में जो शिल्प-विधान, घटना-संयोजन तथा परिणति पाई जाती है, अपभ्रंश में **भविष्यदत्त कथा, उपमश्री चरित** तथा **सुदर्शन चरित** आदि कथाओं में वहीं प्रभाव देखने को मिलता है। प्रेमकथा का प्रभाव अपभ्रंश के बहुसंख्यक चरित काव्यों में देखा जा सकता है। भले ही कृति में प्रेमप्रसंग हो, परन्तु धार्मिक दृष्टि के चलते रचनाकारों ने कृति का रचनात्मक पर्यवसान सद्परिणामी बनाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने इसके लिए प्रधान पात्रों को **धार्मिक प्रवृत्तिसम्पन्न** रूप में चित्रित किया।[17]

अपभ्रंश भाषा में जिस द्वैतपरकता (Dichotomy) को देखा गया, उसका पूर्वतन प्रवृत्तिगत विकास प्राकृत में हो चुका था। प्राकृत में

---

17. डॉ. अवधेश श्रीवास्तव, अपभ्रंश तथा हिन्दी : एक पारस्परिक सम्बन्ध, पृष्ठ-29

जैन शास्त्रों तथा आचार्यों के द्वारा सम्प्रेषित अपभ्रंश में जैन कवियों ने जो रचनात्मक योगदान दिया है, उसमें आत्मा, परमात्मा, निर्जरा, पुण्य-पाप, बंध-मोक्ष आदि तात्त्विक परिप्रेक्ष्यों का समाहार पाया जाता है। आचार्य कुन्दकुन्द का **मोक्ख-पाहुड़, भाव-पाहुड़** आदि ग्रन्थ इसके उदाहरण हैं। अपभ्रंश की भाषिकी सत्ता में धार्मिक तत्त्व तथा भाव को व्यक्त किया गया है। **परमात्म-प्रकाश, पाहुड़ दोहा, दोहानुपेहू।** आदि धार्मिक साहित्य इसी के उदाहरण है। **मुनि कार्तिकेय** द्वारा रचित **कार्तिकेयाणुपेक्षा** भी इसी कोटि के अन्तर्गत माना जाता है।[18]

मुक्तक काव्य की विधा के संदर्भ में भी प्राकृत मुक्तकों का विशेष प्रभाव अपभ्रंश के मुक्तक काव्य पर पड़ा है। जैन मुक्तक काव्य में **पाहुड़** नाम की रचनाएँ प्राकृत में ही मिलती हैं। प्राकृत के **गाहासत्तसई** तथा **वज्जालग्ग** जैसी रचनाओं में ऐसे मुक्तक मिल जाते हैं। अपभ्रंश जहाँ रचनात्मक शैली के संदर्भ में प्राकृत-परम्परा से काफी हद तक प्रभावित रही, वहीं चरित काव्य के मामले में वह प्राकृत से अप्रभावित रही। मुक्तक काव्य रचना के अन्तर्गत अपभ्रंश साहित्य में कवि द्वारा अपने नाम को जोड़ने की जो परिपाटी शुरू हुई, उसे परवर्तीकाल के हिन्दी कवियों ने खूब अपनाया।

जहाँ तक छन्दगत प्रयोग की बात है, सामान्यतः अपभ्रंश में प्राकृत के छन्दों का प्रयोग कम हुआ है। परन्तु इस दृष्टि से **अब्दुर्रहमान** (**अद्दहमाण**) रचित **संदेशरासक** में प्राकृत के लोकप्रिय छन्द **गाहा** का बहुल-प्रयोग किया गया है। वर्णिक वृत्तों में स्रग्धरा, मालिनी आदि संस्कृत से प्राकृत तथा प्राकृत से अपभ्रंश में आए। छन्दों में अपभ्रंश के दोहा, पद्धड़िया, घत्ता आदि छन्द हिन्दी में लोकप्रिय बने। अपभ्रंश के

18. डॉ. रामसिंह तोमर, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, पृष्ठ 240

मिश्र छन्दों की परम्परा में जो विकास हुए, उससे छप्पय, सवैया आदि छन्दों का निर्माण हुआ। इस तरह से अपभ्रंश की स्वकीयता से जहाँ एक तरफ हिन्दी के विकास में सहायता मिली, वहीं काव्य-विषय तथा काव्य-संरचना से प्रभूत-विकास में काम आई। हिन्दी के जैन-काव्य अपभ्रंश तथा उसके पूर्ववर्ती प्राकृत से प्रभावित होते हुए विकास व अगली पारम्परिकता के स्तर पर आगे बढ़ते गए। अपभ्रंश के धार्मिक तथा लौकिक काव्य-रूपों का सीधा प्रभाव हिन्दी पर पड़ा। आगे चलकर संरचना के स्तर पर भक्तिकाल में सन्त कवियों तथा रीति कवियों ने इस परम्परा को अपने-अपने स्वकीय तरीके से अपनाया। भाषिकी विकास के साथ रचनात्मक विकास का युग्म रूप यहाँ द्रष्टव्य है।

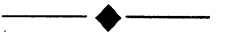

कुवलय माला

श्री केवल मुनि

इस उच्चस्थल ग्राम में शूद्र जाति का एक सार्थवाह पुत्र धनदेव रहता था। धनदेव लोभी, चुगली करने वाला, कुटिल, लोगों को ठगने वाला, मिथ्यावादी और दूसरों का द्रव्य हरण करने में बहुत चतुर था। उसके इन अवगुणों के कारण लोगों ने उसका नाम धनदेव से बदलकर लोभदेव रख दिया।

एक दिन लोभदेव ने पिता से कहा—

पिताजी! मैं थोड़े लेकर दक्षिणापथ जाना और वहाँ उन्हें बेचकर धन उपार्जन करना चाहता हूँ।

पिता ने समझाया—

पुत्र! हमारे घर में धन की क्या कमी है। पुत्र और प्रपौत्र खूब दान दें, भोग करें तो भी धन कम न पड़े। फिर परदेश जाने की क्या आवश्यकता?

पुत्र ने पुनः कहा—

यह तो सत्य है किन्तु जब तक मैं अपने बाहुबल और कुशलता से धनोपार्जन न करूँ तब तक मेरी योग्यता और भाग्यबल का पता कैसे लगेगा।

पुत्र की तर्कयुक्त बात सुनकर पिता ने मन ही मन सोचा–**बात तो ठीक है, सार्थवाह पुत्र को व्यापार करना ही चाहिए।** उसने कहा-

ठीक है, यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो मैं तुम्हारा उत्साह भंग नहीं करना चाहता। तुम जब चाहो तब चले जाना।

प्रसन्न हो गया लोभदेव और जाने की तैयारी करने लगा। सार्थ तैयार हो गया तो ग्राम की सीमा तक छोड़ने पिता आया। चलते समय उसने पुत्र को हित-शिक्षा दी—

हे पुत्र! तुम जीवन में पहली बार विदेश जा रहे हो। मेरी शिक्षा ध्यान से सुनो—

इस संसार में मार्ग विषम है और लोग निष्ठुर। दुर्जनों का अभाव नहीं है अर्थात् बहुत अधिक है और सज्जन अँगुलियों पर गिनने योग्य हैं। भांड और नक्कालों को पहिचानना भी कठिन है। खरीदने-बेचने योग्य वस्तुओं के गुण-दोषों को भली-भाँति समझना बड़ा मुश्किल है। यौवन दुर्धर है और कार्यगति विषम। यमराज अनर्थकारी है और चोर अकारण ही कुपित होकर धन हरण कर लेते हैं। ऐसी विषम परिस्थितियाँ तुम्हें विदेश में मिलेंगी। उस समय कभी पण्डित बनकर और कभी मूर्ख बनकर, कभी उदारता से और कभी निष्ठुरता से, कभी दयालुता से तो कभी गुमसुम होकर; कभी शूरवीरता का प्रदर्शन करके तो कभी कायरतापूर्ण व्यवहार से; कभी विनम्रता दिखाकर तो कभी अभिमान का प्रदर्शन कर; कभी त्यागी बनकर तो कभी विवशता दिखाकर; कभी दीनता से तो कभी चतुराई से कुशलतापूर्वक अपना काम निकाल लेना। इस सब कथन का अभिप्राय यह है कि अवसर के अनुकूल काम करना। मेरी यह शिक्षा यदि हृदय में रखोगें तो सफल होकर लौटोगे।

हितशिक्षा देकर पिता तो ग्राम वापिस आ गया और पुत्र दक्षिणापथ की ओर चल दिया। निर्विघ्न यात्रा करते हुए सार्थ सोपारकपुर जा पहुँचा। वहाँ लोभदेव ने भद्र शेठ के घर आश्रय लिया। थोड़े ही समय में घोड़े अच्छी कीमत में बिक गये और लोभदेव को खूब लाभ हुआ। वह घर वापिस लौटने की तैयारियाँ करने लगा।

सोपारकपुर में एक व्यापारी मंडल था। इस मंडल की एक परम्परा थी कि सभी व्यापारी एकत्र होते और अपने-अपने अनुभव सुनाते। साथ ही विदेशी व्यापारियों का यह मंडल यथायोग्य स्वागत-सम्मान भी करता था।

लोभदेव के जाने की सूचना पाकर सोपारकपुर के व्यापारी मंडल ने उसे स्वागतार्थ निमन्त्रित किया। भद्रशेठ के साथ लोभदेव भी

वहाँ पहुँचा। स्वागत-सत्कार के बाद व्यापारी अपने-अपने अनुभव सुनाने लगे।

एक व्यापारी ने कहा—

मैं घोड़े लेकर कोशल देश गया था। वहाँ के राजा ने मुझे हाथी के बच्चे उन घोड़ों के बदले में दिये। उन्हें बेचकर मैंने खूब लाभ कमाया।

सुपारी लेकर उत्तर देश गया था; वहाँ से घोड़े लाया और बहुत लाभ कमाया। दूसरे व्यापारी ने अपना अनुभव सुनाया।

तीसरे व्यापारी ने कहा—

मैंने पूर्व देश में जाकर मोती बेचे और वहाँ से चमर लाया।

चौथे ने बताया—

मैं द्वारका गया था और वहाँ से शंख लाया हूँ।

पाँचवा बोला—

वस्त्र आदि लेकर बब्बरकुल गया था और वहाँ से हाथी दाँत और मोती लाया हूँ।

छठवें ने कहा—

मैं गाय-भैस लेकर चीन गया था और वहाँ से घोड़ों की लगाम और आँखों की पट्टी लाया हूँ। इसमें मुझे भारी मुनाफा हुआ है।

सातवें ने अपना विचित्र व्यापार सुनाया—

मैं पुरुषों को लेकर स्त्रीराज्य में गया और वहाँ प्रत्येक पुरुष के बराबर तोल कर सोना लिया। मुझे सबसे ज्यादा लाभ हुआ।

तब तक एक व्यापारी बोल उठा—

तुम्हारा व्यापार तो सामाजिक दृष्टि से उचित नहीं है। मेरा व्यापार सुनो, बड़ा ही निराला है। मैं नीम के पत्ते लेकर रत्नद्वीप गया और वहाँ से रत्न भरकर लाया।

सभी व्यापारी एक साथ कहने लगे—

यह व्यापार है, करने योग्य। नीम के पत्तों का ही व्यापार श्रेष्ठ है और बाकी तो सब बेकार हैं।

उस व्यापारी ने कहा—

अच्छा तो है, लेकिन जान की जोखिम है।

कैसे?

व्यापारी बताने लगा—

रत्नद्वीप के लिए समुद्र में लम्बी यात्रा करनी पड़ती है। यहाँ से वह द्वीप बहुत दूर है। वायु साँय-साँय करती है और तूफान आते रहते हैं। लहरें ऊंची-ऊंची उछलती हैं, वाहन टूट-फूट जाते हैं। समुद्र में बहुत बड़े-बड़े जलजीव होते हैं—जलतन्तु, तिमिंगल मत्स्य, रौद्रराक्षस, वैताल और न दिखाई देने वाले जल में डूबे पर्वत, समुद्री लुटेरे, डाकू, दुर्गम मार्ग आदि अनेक विघ्न हैं। इन सब संकटों को सहन करे और बाधाओं से बच निकले तो रत्नद्वीप पहुँचे।

ऐसा रोमांचकारी वर्णन सुनकर सभी व्यापारी कह उठे—

सत्य है, रत्नद्वीप जाना बहुत कठिन है; किन्तु दुःख भोगे बिना सुख भी तो नहीं मिलता।

लोभदेव भी बैठा-बैठा उस व्यापारी की बातें सुन रहा था। उसकी लोभवृत्ति और धनतृष्णा जाग्रत हो गई। रत्नों का नाम सुनकर उसके मुँह में पानी भर आया। अपने आश्रयस्थल पर आकर बोला—

मित्र भद्र शेठ! नीम के पत्तों के बदले रत्नों की प्राप्ति! इससे ज्यादा लाभ का कोई धन्धा नहीं हो सकता। फिर भी क्यों नहीं करते?

भद्र शेठ ने उत्तर दिया—

लोभदेव! मनुष्य को अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रवृत्ति करनी चाहिए। अधिक धन की तृष्णा दुःखदायक ही होती है।

निरुद्यमी पुरुष ऐसे ही बहाने ढूँढ़ते हैं। दुःख और उद्यम के बिना धन-प्राप्ति नहीं होती। मैं तो अवश्य जाऊँगा। तुम भी साथ चलो।

मेरी तो इच्छा नहीं है। तुमसे भी यही कहता हूँ कि तुमने काफी धन उपार्जन कर लिया है। घर जाओ, बन्धुओं का सम्मान करो, स्वजनों को दो, दान धर्म करो, दोनों का उद्धार करो और अच्छे कार्य करके सुख-सन्तोषपूर्वक जीवन बिताओ।

पर सुख-सन्तोष लोभदेव को रुचिकर ही कहाँ था, कहने लगा-

सन्तोष अकर्मण्यता की निशानी है और सुख आलस-कायरता की। तुम मेरे साथ चलो और एक बार उद्यम करके देखो। उद्यम से ही लक्ष्मी प्राप्त होती है।

अति लोभ से उपार्जित लक्ष्मी भी विनष्ट हो जाती है। बार-बार धन की प्राप्ति होती है और बार-बार उसका विनाश हो जाता है। इसलिए मैं तो जाना नहीं चाहता।

लोभदेव की तीव्र इच्छा तो थी ही रत्नद्वीप जाने की। उसे एक साथी की तलाश थी, इसीलिए वह भद्र शेठ को उकसा रहा था। उसने कहा—

शेठजी! आखिर बात क्या है? वणिक् पुत्र तो कभी निरुद्यमी नहीं होता। आप इतने निराश क्यों हैं?

निराश क्या? सात बार समुद्री मार्ग से व्यापार किया और सातों बार ही वाहन टूट गए। बड़ी कठिनाई से जान बची। मेरे भाग्य में समुद्री व्यापार से लाभ नहीं है। इसलिए मैं जाना नहीं चाहता।

लोभदेव ने आग्रह किया—

एक बार मेरे साथ चलकर देखिए। यदि इस बार भी हानि हो तो फिर मत जाना।

तुम्हारी इतना ही आग्रह है तो मैं चला चलूँगा, किन्तु वाहनों के स्वामी तुम्हीं बनोगें। मैं मंदभागी हूँ।

लोभदेव ने भद्रशेठ की यह शर्त स्वीकार कर ली। रत्नद्वीप जाने की तैयारियाँ होने लगी। वाहन तैयार किये गये, नौकर-चाकर नियुक्त किया गए, वाहनों में नीम के पत्ते ठसाठस भर लिये गये।

अब शुभ मुहूर्त और शुभ लग्न देखा गया। ज्योतिषियों ने सिर खुजा-खुजाकर, गम्भीर चिन्तन-मनन कर, ग्रहों के बलाबल देखे और शुभ नक्षत्र बता दिया। देवार्चना हुई, मंगलवाद्य बजे और सबसे अधिक ब्राह्मणों ने उच्च स्वर से मन्त्रोच्चार करते हुए आशीर्वाद दिया। सभी को सफलता का पूर्ण विश्वास हो गया। उल्लास और उत्साह से साथ वाहन चल पड़े। लोभदेव का मन धन-प्राप्ति की आशा से बल्लियों उछल रहा था और भद्रशेठ अपने पुराने अनुभवों की स्मृति से सशंकित था।

समुद्र की विघ्न-बाधाओं को पार करते हुए वाहन रत्नद्वीप जा पहुँचे। वहाँ के राजा को भेंट देकर व्यापार प्रारम्भ किया। अपना माल बेचा और वहाँ से नया माल खरीदकर भरा। राज्य-कर चुकाकर वाहन घर की ओर लौट पड़े।

वाहन अपनी गति से समुद्र के जल पर तैर रहे थे और लोभ देव के हृदय में लोभ हिलोरें मार रहा था। वह सोच रहा था—**इस लाभ में भद्रशेठ भी भागीदार है। यह तो आना ही नहीं चाहता था। मैं ही तो प्रेरणा देकर इसे लाया था। इसका क्या हक है, इस धन पर, यह तो मेरे बुद्धि-कौशल और उद्यम का फल है। इससे पीछा छुड़ाना चाहिए। यदि इसे धक्का मार दूँ तो समुद्र में समा जायगा और सम्पूर्ण धन का स्वामी मैं बन जाऊँगा।** लोभ का भूत तो सिर पर सवार था ही। भद्रशेठ के पास जाकर बोला—

सेठजी! इस समय अवकाश है, लाभ-हानि का हिसाब कर लें।

भद्रशेठ तुरन्त तैयार हो गया और उसके साथ चलने लगा। अवसर देखकर लोभदेव ने उसे धक्का मार दिया। धक्का लगते ही भद्रशेठ सागर में समा गया।

एक योजन आगे निकल जाने पर लोभदेव ने शोर मचाया—**अरे कोई बचाओ। वाहनों को रोको। मेरा मित्र भद्रशेठ समुद्र में गिर गया है। इसके बिना मेरा जीवन भी बेकार है।**

लोभदेव की पुकार सुनकर सेवक दौड़े आए। उसकी आँखों से बहती हुई आँसुओं की धार देखकर उन्हें सहानुभूति हो गई। बोले—

स्वामी! होनहार होकर ही रहती है। भद्रशेठ का अन्त इसी प्रकार होना था आप धैर्य रखिए।

धैर्य कैसे रखूँ? मेरा तो मित्र ही चला गया। वाहन रोको। खोज कराओ।

वाहन रोकने से क्या होगा? अब तक तो सेठजी लहरों के वेग से न जाने कहाँ पहुँच गए होंगे।

तो मैं भी सागर में समाधि ले लूँगा।

नहीं! नहीं!! ऐसा मत करिए आप भी चले गए तो वाहनों का स्वामित्व कौन सँभालेगा। हम सब अनाथ हो जायेंगे। हमारे लिए आपको जीवित रहना ही पड़ेगा।

तुम लोग कहते हो तो मैं अपना निश्चय बदल लेता हूँ, वरना मुझे हार्दिक दुःख है। वाहन रोककर उनकी खोज तो कराओ। शायद मिल ही जाएँ।

सेवकों ने वाहन रोक दिये और खोज होने लगी किन्तु भद्रशेठ न मिला। कहीं एक योजन आगे आकर वह मिल सकता था? जब सब लोग निराश हो गए तो प्रधान नाविक ने वाहन आगे बढ़ाए और सेवकों ने आकर लोभदेव को बताया—

स्वामी! सेठजी का कहीं पता न लगा। सम्भवतः उन्हें कोई जलजन्तु उदरस्थ कर गया।

यह सुनते ही लोभदेव पछाड़ खाकर गिर पड़ा और सेवक उसके उपचार में लग गए।

जलचर जीव ही तो खा गया था भद्रशेठ को। पानी में गिरते ही उसे एक मगर-मच्छ ने पकड़ लिया। मगर-मच्छ ने अपनी विकराल दाढ़ों और भयंकर मुख में दबाकर उसे उदरस्थ कर लिया। भयंकर

वेदना से भद्रशेठ का प्राणान्त हुआ और रत्नप्रभा भूमि में व्यंतर देवों के निवास स्थानों में अल्प आयु वाला व्यंतर देव बना। उत्पन्न होते ही अपने पूर्व जन्म पर विचार किया तो लोभदेव के कपट-कृतघ्नता का ज्ञान हो गया। क्रोध से बलबला उठा—व्यंतर देव! ऐसी नीचता, तुच्छ धन के लिए घोर विश्वासघात। अब देखूँगा इस अधम लोभदेव को– कैसे सुख से सम्पत्ति का भोग करता है?

सचेत होने का बहाना करके लोभदेव ने सेवकों को अपना-अपना नियत काम करने का आदेश दिया और स्वयं अकेला बेठकर सुखद भविष्य की कल्पनाएँ करने लगा। अपनी सफलता पर वह फूला नहीं समा रहा था। सुख-स्वप्नों में मग्न हो रहा था वह।

किन्तु समुद्र के भयंकर गर्जन से उसके सुख-स्वप्न भंग हो गए। प्रबल वेग से वायु झंझावात बनकर बहने लगा, ऊँची-ऊँची लहरों के थपेड़ों से वाहन डगमगाने लगे। सेवकों को साक्षात् मृत्यु नजर आने लगी। चारों ओर से आवाजें आने लगीं—बचाओं, बचाओ। सभी अपने-अपने इष्टदेवों का स्मरण करने लगे। त्राहिमाम् त्राहिमाम् जपने लगे।

एकाएक चारों ओर अंधकार छा गया। उस अंधकार में से एक विकट मूर्ति प्रगट हुई। मुख से अग्नि स्फुलिंग छोड़ते हुए उसने लोभदेव को सम्बोधित किया—

अरे कृतघ्नी, दुष्ट, लोभदेव! तूने निरपराधी भद्रशेठ को समुद्र में धक्का देकर मार डाला और अब उसकी सम्पत्ति का भोग करना चाहता है। ले, अपने किए का फल चख।

यह कहकर उसने वाहन को ऊँचा उठाया और आकाश में ले चला। लोभदेव ने बहुत अनुनय-विनय की किन्तु भद्रशेठ के जीव उस व्यन्तर ने एक न सुनी और योजन ऊपर आकाश में ले जाकर वाहनों को छोड़ दिया। वाहन समुद्र तल पर गिरे और चकनाचूर हो गए। सभी प्राणी और सम्पत्ति सागर के गर्भ में समा गए। लोभदेव का आयुष्य अभी बाकी था, इसलिए उसके हाथ एक लकड़ी का पटिया लग गया। वह उसे पकड़े लहरों के झूले में झूलने लगा।

इस विनाश लीला से व्यन्तर का कोप शान्त हो गया और वह अपने स्थान को चला गया। लोभदेव भी सात दिन तक मृत्यु से संघर्ष करके तारद्वीप के किनारे जा लगा। थकान के कारण वह निढाल होकर तट में पसर गया।

कुछ समय बाद सागर तट की शीतल पवन से सचेत हुआ तो अपने चारों ओर श्यामवर्णी मनुष्यों को देखा। उन पुरुषों की आँखें लाल थी और सिर पर बालों के जूड़े से बँधे हुए थे। सभी यमराज के सहोदर लगते थे। ज्यों ही उन्होंने उसे पकड़ा, लोभदेव ने पूछा—

मुझे क्यों पकड़ते हो?

धैर्य रखो परदेशी! यह तो हमारे देश की प्रथा है।

परदेशियों को बन्दी बनाना?

नहीं उनका भोजन-आवास आदि से सत्कार करना।

वे लोग लोभदेव को अपने घर ले गए। उसका अभ्यंगन आदि करके स्नान कराया, सुस्वादु भोजन से सन्तुष्ट किया और एक उच्चासन पर बिठाया। मन ही मन सोचने लगा लोभदेव– **कितने अच्छे हैं, यहाँ के निवासी! अकारण ही सेवा करते हैं। मेरे तो भाग्य ही खुल गए जो ऐसे सज्जनों के द्वीप में आ गया। तन के तो काले हैं पर मन के कितने उज्ज्वल हैं ये लोग।**

और अब कमाल दिखाया उन भले लोगों ने। कुछ ने उसे जकड़ लिया और कुछ कटार से उसका माँस काटने लगे, रुधिर निकालने लगे। लोभदेव बहुत तड़पा, हाथ-पैर फैके, शोर भी मचाया किन्तु वहाँ सुनने वाला था ही कौन? सभी तो एक से थे। रुधिर निकल जाने और घावों की तीव्र वेदना से वह अचेत हो गया। उन लोगों ने उसके तन पर किसी औषधि का लेप कर दिया।

औषधोपचार और भोजन खिलाकर उसे पुनः हष्ट-पुष्ट बनाया। छह महीने में जब वह खूब ताकतवर हो गया तो पुनः उसका रुधिर

निकाला गया। फिर औषधोपचार और स्वादिष्ट भोजन से पुष्ट बनाने का क्रम चला।

छह महीने तक खूब खिलाना-पिलाना और एक दिन मांस उतार लेना यह कम बारह वर्ष तक चलता रहा। लोभदेव की दशा बकरीद के बकरे की सी थी जिसे साल भर तक खूब खिला-पिलाकर पुष्ट बनाया जाता है और फिर बकरीद के दिन हलाल कर दिया जाता है। यह दारुण दुःख भोगते-भोगते लोभदेव अस्थि-पिंजर मात्र रह गया। वह रात-दिन यही सोचता कि किसी तरह यहाँ से छूटकारा मिले। वह प्रभु से प्रार्थना करता कि किसी तरह यहाँ से मुक्ति दिलाओ।

उसको मुक्ति का दिन भी आ गया। एक बार, जब उसका मांस और रुधिर निकलने के बाद उसे वे लोग खुले आसमान के नीचे छोड़ गये तो एक भारंड पक्षी ने देख लिया। मांस पिंड समझकर उसने उसे पंजों में दबाया और ले उड़ा। भारंड पक्षी उड़ता जाता और कभी उसका रुधिर पी लेता तो कभी चोंच मारकर मांस की, बोटी उखाड़ लेता। लोभदेव पीड़ा से बिलबिला उठता, पर विवश था।

भारंड पक्षी लोभदेव को पंजों में दबाए समुद्र के ऊपर उड़ रहा था। तभी उसे दूसरे भारंड पक्षी ने देख लिया। वह यह कैसे सहन करता कि उसका एक जाति भाई तो चटखारे ले-लेकर सुस्वादु मानव मांस खाये और वह देखता ही रह जाय। मारा झपट्टा उसने। पहला भारंड भी सचेत हो चुका था। उसने भी प्रतिरोध किया। ठन गई दोनों में। घात-प्रतिघात होने लगे। दो की लड़ाई में तीसरे का फायदा होता ही है। पंजे शिथिल पड़े, और लोभदेव छपाक से सागर जल में जा गिरा। उसे तारद्वीप से मुक्ति मिली। भारंड पक्षी के कारण और भारंड की पकड़ से दूसरे भारंड ने छुटकारा दिला दिया।

सागर के खारे जल में गिरते ही लोभदेव की वेदना असह्य हो गई। घावों पर नमकीन जल छुरी से अधिक पीड़कारी सिद्ध हुआ। बुरी तरह तड़पने लगा वह। विश्वासघात और धनतृष्णा का कुफल भोग रहा

था–विवश, लाचार! अथाह सागर में वह जितना हाथ-पाँव मारता, जल भी उतनी ही तेजी से उछलता और उसके घावों की पीड़ा बढ़ा देता। निढ़ाल हो गया वह। कुछ देर तक तो लहरें उससे खेलीं और फिर अपवित्र समझकर तट पर फेंक दिया। उस पापी का भक्षण जलजन्तुओं ने भी नहीं किया।

तट पर कुछ दूर आगे चलकर वह एक उद्यान में पहुँचा। वहाँ के वृक्षों की शीतल-मंद-सुगन्धित पवन से उसकी पीड़ा कुछ कम हुई। वह एक विशाल वट वृक्ष के नीचे बैठ गया। अपने जीवन की घटनाएँ उसके स्मृति पटल पर तैरने लगीं—**हाय! मैंने नरक जैसे दारुण दुःख भोगे। यह सब मित्रघात का कुपरिणाम है। धनतृष्णा के वशीभूत होकर मैंने अपने सरल हृदयी मित्र को सागर में धकेल दिया। मैं बड़ा पापी हूँ। मेरे इस पाप का प्रायश्चित कैसे होगा?**

इन्हीं विचारों में डूबता-उतराता वह सो गया। कुछ समय बाद वार्तालाप की ध्वनि से उसकी नींद खुल गई। वह चारों ओर देखने लगा। बातचीतों की आवाज तो आ रही थी किन्तु मनुष्य कोई नहीं दिखाई दे रहा था। उसने कान लगाकर सुना—भाषा भी विचित्र थी और आवाज भी। न मानवों की भाषा थी और न बोली। उसने सोचा अवश्य ही यह पिशाचों की भाषा है। इस वट-वृक्ष पर पिशाच रहते होंगे और वे ही परस्पर वार्तालाप कर रहे हैं। ध्यान पूर्वक सुनने लगा वह। रमणीयता पर चर्चा चल रही थी। एक पिशाच ने पूछा—

इस पृथ्वी पर कौन सा रमणीय स्थान है?

विद्याधरों का उपवन। दूसरे ने उत्तर दिया।

तीसरे ने कहा–

नहीं, सुमेरु का नंदनवन बहुत रमणीय है।

चौथा बोला–

सुन्दरा में सर्वोत्तम तो हिमगिरि है।

पांचवें ने कहा–

सुन्दरा के साथ-साथ पवित्रता भी तो होनी चाहिए। गंगा नदी ही सर्वोत्तम है जो मित्रद्रोही और नरघाती को भी पवित्र कर देती है।

सभी पिशाचों ने इसे स्वीकार किया और बोले–

वहीं चलना चाहिए।

चलो! यह कहकर पिंशाच आकाश में उड़ गए।

यह वार्ता लोभदेव भी बैठा-बैठा सुन रहा था। उसने सोचा **प्रायश्चित का ढंग मिल गया। पिशाच भी कह रहे है कि गंगा स्नान से मित्रघात का पातक मिट जाता है। मुझे भी वहीं चलना चाहिए। मैं भी तो मित्रघाती हूँ।** यह सोचकर वह गंगा नदी की ओर चल दिया।

यह वृत्तान्त सुनाकर मुनि धर्मनंदन ने राजा पुरंदरदत्त से कहा-

हे राजन्! घूमता-घामता यह लोभदेव अब कौशाम्बी आ पहुँचा है और तुम्हारे पीछे बैठा है।

अपने जीवन का यथार्थ वर्णन सुनकर लोभदेव अपने स्थान से उठा और आचार्यश्री के चरण पकड़कर बोला–

आपका कथन सत्य है गुरुदेव! सब कुछ इसी ढंग से हुआ था। मैंने ही तृष्णावश अपने मित्र भद्रशेठ का हनन किया था। अब मेरे जैसे पापी का उद्धार आप ही कर सकते हैं।

आचार्यश्री ने समझाया–

भद्र! लोक में गंगा पतित-पावनी कही जाती है किन्तु वह गंगा यह गंगा नदी नहीं है। इसके जल में स्नान करने से तो तन ही उज्ज्वल हो सकता है, मन नहीं। यह आत्मा का कलंक नहीं धो सकती। यदि ऐसा होता तो इसमें मछलियाँ और कछुए आदि जितने जीव हैं सभी मुक्त हो जाते क्योंकि वे तो इसी में पैदा होते हैं, जीवनभर इसी के जल में रहते हैं और इसी में मर जाते हैं। लोग गंगा का अभिप्राय गंगानदी समझते हैं जबकि पतित-पावनी गंगा कोई और ही है।

राजा पुरन्दरदत्त को जिज्ञासा हो उठी। उसने पूछा–

प्रभो! वह गंगा कौन सी है?

महाराजश्री ने बताया–

वह गंगा है सम्यक्दर्शन की, सम्यक्ज्ञान की और सम्यक्चारित्र की। इस गंगा में अवगाहन करने से आत्मा निष्कलंक हो जाती है, उसके सभी पाप-मल धुल जाते हैं।

पतित पावनी गंगा का स्वरूप सुनकर सम्पूर्ण सभा भाव-विभोर हो उठी।

लोभदेव ने आचार्यश्री की चरण-शरण ग्रहण कर ली।

मोहदत्त की कथा :

बहती गंगा में स्नान करना कौन नहीं चाहता और जब ज्ञान-गंगा द्वार पर ही आ गई हो तो क्यों न धर्म का पूर्ण स्वरूप ही समझ लिया जाय। राजा पुरन्दरदत्त क्रोध, मान, माया, लोभ चारों कषायों का स्वरूप और उनका कुपरिणाम तो प्रत्यक्ष देख ही चुका था। अब उसने मोह के बारे में जिज्ञासा प्रकट की।

गुरुदेवश्री बताने लगे–

राजन्! मोह का स्वभाव मदिरा जैसा है। जिस प्रकार शराबी मनुष्य को हिताहित का ज्ञान नहीं होता, उसी प्रकार मोही जीव भी आत्मा के हित को नहीं पहचान पाता और शरीर संसार के भोगों में ही लिप्त रहता है। उन्हीं में सुख मानता है। ईर्ष्या-द्वेष के कारण कुल मर्यादा का नाश कर देता है। विषयासक्त होकर पत्नी और बहिन में अन्तर नहीं कर पाता, पिता को भी मार देता है।

ऐसा अधम पुरुष इस सभी में भी है क्या? राजा पुरन्दरदत्त ने पूछा।

आचार्य धर्मनन्दन ने बताया–

हाँ, है! तुमसे दूर वासव मंत्री की दाहिनी ओर बैठा है। यह कहे हुए वचनों को या तो सुनता ही नहीं और सुनता भी है तो समझता नहीं। यह खुली आँखों से भी सामने होने वाले कार्य को नहीं देख पाता। हारे हुए जुआरी की भाँति शोकमग्न रहता है। सुन्दर अंगों वाला होते हुए भी ठूँठ के समान विवेकशून्य है। इसका नाम है–मोहदत्त।

इस मोहमूढ़ ने क्या अकार्य किया है?

इसका पूर्ण वृत्तान्त सुन लो, स्वयं ही समझ जाओगे।

पूज्यश्री मोहदत्त का जीवन वृत्त सुनाने लगे।

कोशल नगरी पर कोशल नाम का ही उग्र स्वभाव वाला राजा राज्य करता था। वह पर-दारा भोगियों के लिए तो काल के समान ही भयंकर था। उसके उग्र स्वभाव के कारण सभी सामंत सदा भयभीत रहते थे। अनेक राजाओं के मस्तक उसने अपने चरणों में झुका लिए थे।

राजा कोशल का एक पुत्र था–तोसल। तोसल विद्याओं और कलाओं में निपुण था। वह अतिथिदान, पराक्रम, नीति आदि अनेक गुणों को धारण करने वाला था। अपनी नगरी में वह निरंकुश घूमता रहता था।

एक दिन वह नगरी में घूम रहा था। संध्या का समय था। उसकी दृष्टि अनायास ही नगरसेठ के भवन की ओर उठ गई। गवाक्ष में से झाँकती हुई एक युवती दिखाई पड़ी। दृष्टि मिली और अंग में अनंग समा गया। काम-विह्वल हो गया राजपुत्र तोसल। युवती भी अछूती न रह सकी, वह भी काम-पीड़ित हो गई। राजपुत्र ने अँगुली अपने वक्षस्थल पर रखी और दाहिने हाथ से हृदय का मर्दन किया- संकेत था तुम्हारे नयन बाण ने मेरा हृदय मथ डाला है। युवती ने प्रत्युत्तर में कटाक्ष निक्षेप करते हुए तलवार की नोंक दिखा दी। संकेत हुए और समझने वाले समझ गए। राजकुमार ने मन ही मन विचार किया–वणिक् पुत्री होते हुए भी कितनी चतुर है और वणिक् पुत्री ने

सोचा–कैसा बाँका और कलावान युवक है, युवतियों के मन के गूढ़ भेद को समझने वाला।

राजपुत्र अपने कक्ष में जा पहुँचा। वह पलंग पर लेट गया किन्तु वणिक् कन्या उसकी आँखों में तैरती रही। उसे चैन न पड़ा। प्रथम प्रहर व्यतीत होते-होते उसने अभिसार योग्य वस्त्र पहिने, पीठ पर ढाल बाँधी, हाथ में तलवार ली और कंधे पर कमंद लटकाकर नगरसेठ के भवन के नीचे जा पहुँचा। कमन्द फेंकी और उसके सहारे छत पर जा चढ़ा।

छत पर अकेली वणिक् पुत्री एक शैय्या पर सो रही थी। नींद में भी उसकी पुतलियों में स्पन्दन हो रहा था। चेहरे पर भाव आ-जा रहे थे। राजपुत्र तोसल ने अपनी चौकन्नी नजर चारों ओर दौड़ाई। वहाँ और कोई नहीं था। वणिक् कन्या ही अकेली सो रही थी। चुपके से ढाल और तलवार एक ओर रखी और दवे पाँव शैय्या के समीप जा पहुँचा। अपना हाथ सोती हुई वणिक् पुत्री की आँखों पर रख दिया।

हाथ का स्पर्श पाते ही वणिक् पुत्री की नींद उचट गई। उसकी शरीर पुलकित हो गया। मन ही मन विचार करने लगी–

रात्रि का दूसरा प्रहर है, सखी भी पास नहीं है और मैं छत पर सो रही हूँ फिर किसका हाथ है यह? कौन हो सकता है? हाँ..... हाँ..... वहीं राजपुत्र होगा जो आज ही संध्या को मुझे काम-पीड़ित कर गया था। स्पर्श भी पुरुष का सा कठोर है। प्रगट में बोली–

तुम्हारे स्पर्श से मैं रोमांचित हो गयी हूँ। अरे मनमोहन! अब तो हाथ हटाओ।

क्रमशः

JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

English :

1.	Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:		
	Vol - 1 (satakas 1- 2)	Price : Rs.	150.00
	Vol - 2 (satakas 3- 6)		150.00
	Vol - 3 (satakas 7- 8)		150.00
	Vol - 4 (satakas 9- 11) ISBN : 978-81-922334-0-6		150.00
2.	James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)	Price : Rs.	100.00
3.	P. C. Samsukha - Essence of Jainism ISBN : 978-81-922334-4-4	Price : Rs.	15.00
4.	Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, ISBN : 978-81-922334-7-5	Price : Rs.	15.00
5.	Verses from Cidananda Translated by Ganesh Lalwani	Price : Rs.	15.00
6.	Ganesh Lalwani - Jainthology ISBN : 978-81-922334-2-0	Price : Rs.	100.00
7.	Lalwani and S. R. Banerjee- Weber's Sacred Literature of the Jains ISBN : 978-81-922334-3-7	Price : Rs.	100.00
8.	Prof. S. R. Banerjee Jainism in Different States of India ISBN : 978-81-922334-5-1	Price : Rs.	100.00
9.	Prof. S. R. Banerjee Introducing Jainism ISBN : 978-81-922334-6-8	Price : Rs.	30.00
10.	Smt. Lata Bothra- The Harmony Within	Price : Rs.	100.00
11.	Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira	Price : Rs.	100.00
12.	Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity	Price : Rs.	100.00

Hindi :

1.	Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) ISBN : 978-81-922334-1-3 Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	20.00
3.	Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	30.00
4.	Ganesh Lalwani - Chandan-Murti Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	50.00
5.	Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira	Price : Rs.	60.00

6.	Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat,	Price : Rs.	45.00
7.	Ganesh Lalwani -- Panchdasi.	Price : Rs.	100.00
8.	Rajkumari Begani-Yado ke Aine me.	Price : Rs.	30.00
9.	Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra	Price : Rs.	15.00
10.	Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm	Price : Rs.	24.00
11.	Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika	Price : Rs.	20.00
12.	Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad	Price : Rs.	250.00
	ISBN : 978-81-922334-8-2		
13.	Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra	Price : Rs.	50.00
14.	Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan	Price : Rs.	50.00
15.	Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal		
	ISBN : 978-81-922334-9-9	Price : Rs.	50.00
16.	Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh	Price : Rs.	

Bengali :

1.	Ganesh Lalwani-Atimukta,	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani-Sraman Sanskriti ki Kavita	Price : Rs.	20.00
3.	Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma.	Price : Rs.	15.00
4.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma	Price : Rs.	20.00
5.	Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra	Price : Rs.	25.00
6.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita	Price : Rs.	20.00
7.	Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti	Price : Rs.	20.00

Some Other Publications :

1.	Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir	Price : Rs.	15.00
2.	Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan	Price : Rs.	10.00
3.	Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma	Price : Rs.	100.00
4.	Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali)	Price : Rs.	
5.	Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali)	Price : Rs.	50.00
6.	K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira	Price : Rs.	25.00

ऐसा विश्वास दिल में जमाते चलो
सिद्ध, अरिहन्त को मन में रमाते चलो,
वक्त आयेगा ऐसा कभी न कभी
सिद्धि पायेंगे हम भी कभी न कभी।

KUSUM CHANACHUR

Founder : Late. Sikhar Chand Churoria

Our Quality Product of :

Anusandhan	Bhaonagari Ghantia
Kolkata Nasta	Jocker
Badsha Khan	Lajawab
Picnic	Papri Ghantia
Raja	Rim Jhim
Shubham	Tinku

MANUFACTURED BY

M/s. K. K. Food Product
Prop. Anil Kumar, Sunil Kumar Churoria
P. O. Azimganj, Dist: Murshidabad
Pin No.- 742122, West Bengal
Phone No.: 03483-253232,
Fax No.: 03483-253566

KOLKATA ADDRESS:

36, Maharshi Debendra Road, 3rd Floor Room No.- 308
Kolkata - 700 006, Phone No.: 2259-6990, 3293-2081
Fax No.: 033-2259-6989, (M) 9434060429, 9830423668

TITTHAYARA
Vol XXXVI No.02
25th May 2012

Registered
No. KOL.RMS / 070/2010-12
R.N.I. 30181/77

Creators of Prestigious Interiors
Established 1970

Creativity is a Modern Religion

Nahar

Architects . Interiors . Consultants

5B, Indian Mirror Street,Kolkata-700013
Phone No.-2227 5240/45, Fax :22276356
Email Id:info@nahardecor.com